Published in: Banas Jan. 11(4); 2015; 175-183

लंबी कहानियां और यथार्थ की परत-दर-परत स्कैनिंग

बिपिन तिवारी

सामाजिक संरचना जैसे-जैसे जटिल होती जाती है मनुष्य का आत्म भी उसी हिसाब से जटिल होता चला जाता है। इस जटिलता के कारण ही यथार्थ को सीधे-सीधे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। फलतः नई साहित्यिक विधाओं को न केवल तलाशा जाता है अपितु नए शिल्प भी विकसित किये जाते हैं। हिंदी कहानी में नवें दशक की लंबी कहानी विधा कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर एक नए रूप में दिखाई पड़ती है। यह परंपरागत लंबी कहानी के कथ्य और शिल्प दोनों से अलग है। यह वह दौर है जब कहानी आंदोलन समाप्त हो चुके थे। अब कहानी में जन की समस्याओं को अभिव्यक्त करने पर विशेष जोर दिया जा रहा था। अब साहित्य में यथार्थ को अभिव्यक्त करना महत्वपूर्ण था न कि यथार्थ किस रूप में अभिव्यक्त किया जाये। इस तथ्य को साहित्य की दूसरी विधाओं में भी देखा जा सकता है। यथार्थ को अभिव्यक्त करने का कोई निश्चित फार्म नहीं था। इसीलिए इस दौर की कहानियों में बहुत से नए प्रयोग दिखाई पड़ते हैं। लंबी कहानी पुख्ता तौर से इस तथ्य को प्रमाणित करती है। लंबी कहानी में कहानी के भीतर कई अलग-अलग कहानियां चलती हुई दिखाई पड़ती हैं। शिल्प के स्तर पर यदि देखंे तो फैंटेसी से लेकर जादुई यथार्थवाद आदि देखे जा सकते हैं। लंबी कहानी के बारे में कथाकार अरुण प्रकाश 'लाखों के बोल सहे' कहानी संग्रह की भूमिका में लिखते हैं-''आज का कहानीकार ज्यादा बारीक, जटिल और बड़े परिप्रेक्ष्य में अधिक आत्मीयता से मनुष्य की कहानी कहना चाहता है...जिससे मानवीय अस्तित्व की पूरी प्रामाणिक तस्वीर बने और पाठक उसे विश्वसनीय समझें। लंबी कहानी का कथ्य अपेक्षाकृत अधिक अंतस्सम्बन्धित होता है। कथ्य अनेक आयामों से निर्मित होता है।''

अरुण प्रकाश जी की इन बातों को यदि उस पूरे दौर की कहानियों पर लागू किया जाये तो इसे आसानी से देखा जा सकता है। इस दौर के अधिकांश कहानीकारों-अरुण प्रकाश, उदय प्रकाश, संजीव, प्रभा खेतान, प्रियंवद, देवेन्द्र, अखिलेश आदि ने लंबी कहानियां लिखी हैं। हम यहां पर कथाकार अखिलेश की लंबी कहानियों पर विचार करेंगे। अखिलेश की लंबी कहानियां इस विधा में एक अलग आयाम जोड़ती हैं। जिनमें कथा की रोचकता है, कथा कहने का अपना अलग अंदाज है। जिसमें लोक कथाएं हैं। किस्से कहानियां हंै। अखिलेश अपनी कहानियों में कथा कहने के मान्य खांचों को तोड़ते हैं और एक नया फ्रेम तैयार करते हैं। इनकी कहानियों मंे यथार्थ एक रेखीय नहीं है। यथार्थ कई-कई परतों वाला है। जिसकी परत-दर-परत स्कैनिंग कहानियों में दिखाई पड़ती है। अखिलेश की कहानियों के मार्फत आज के समय की विदूरपताओं, विडंबनाओं को गहराई से समझा जा सकता है। जिसके लिए किसी खास शिल्प का सहारा नहीं लिया गया है। अखिलेश की लंबी कहानियों की विवेचना कुछेक संदर्भों में रखकर की गई है।

विकास का यथार्थ और कथ्य की अंतस्सम्बन्धिता

अखिलेश की लंबी कहानियां वर्तमान विकास के स्वरूप पर गंभीर टिप्पणी करती हैं। वर्तमान विकास का जो मा◌ॅडल है वह समाज के एक खास वर्ग को ध्यान में रखकर बनाया गया है। यह खास वर्ग केवल अपने निजी हितों तक सीमित है। ऐसा विकास जो समाज में असमानता की खाई को और गहरा करता है, ऐसा विकास जो एक वर्ग को और ज्यादा असंवेदनशील बनाता है। इन पर सवाल करने का सीधा सा अर्थ है उन लोगों के पक्ष में खड़ा होना जो दमित हैं, शोषित हैं। अखिलेश की 'शापग्रस्त' कहानी के कथा पात्र प्रमोद वर्मा को इसीलिए पूरी व्यवस्था से नफरत हो जाती है। इस नफरत को कहानीकार कई प्रतीकों और घटनाओं के मार्फत प्रस्तुत करता है। जिसमें उसके इस्तीफा देने, सस्पेंड होने और फिश्चुला रोग होने आदि हैं। प्रमोद वर्मा आज के स्वार्थी पैमानों पर पूरी तरह से सुखी है लेकिन अपने भीतर के तनाव के कारण वह इस तथाकथित सुख में अपने को पीड़ित महसूस करता है। ''मैं आदर्श भारतीय नागरिक की तरह बाईं पटरी पर चला और सच्चे भारतीय पुरुष की तरह अहर्निश गृहस्थी का खड़खड़ा खींचा। पत्नी द्वारा रोज-रोज फ़जीहत के बावजूद मैं बेशर्म के पौधे की तरह हरा-भरा खिला-खिला रहा। वी.सी.आर. खरीदा, स्कूटर खरीदा, सोफ़ा, फ्रिज सब कुछ है मेरे पास। एक स्थानीय किन्तु प्रतिभाशाली चित्रकार के चित्र भी टंगे हैं ड्राइंगरूम में। अपना मकान न सही किन्तु प्ला◌ॅट खरीद रखा है। पैंतीस वर्ष की अवस्था में कोई मध्यवर्गीय नवयुवक इससे अधिक क्या कर सकता है? बच्ची को बढ़िया स्कूल में पढ़ाता हूं। कोई भरोसा न करे तो मेरे घर का फ्रिज खोलकर देख ले, खाने-पीने के सामान से ठसाठस रहता है। ढ़ाई किलो तो दूध खरीदा जाता है। मेरे पेट की गड़बड़ी को छोड़ दिया जाये तो सब कुछ चुस्त-दुरुस्त है। पर हक़ीक़त नहीं है यह। मैं एक रोग का रोगी हो गया हूं पिछले कुछ दिनों से। अजीबोग़रीब रोग हैं, मुझे कहीं भी किसी भी चीज़ में सुख नहीं मिलता।''

दरअसल यह जो सुख की तलाश है वह व्यक्ति को बेचैन किए रहती है। यह बेचैनी मूलतः आज के उस पूरे परिवेश से है जिसमें व्यक्ति अपने निजी हितों तक सीमित होकर ही सोचता-विचारता है। इससे बाहर वह देखता ही नहीं। आज की नजर में ऐसे लोग ही सुखी हैं। प्रमोद वर्मा तब तक सुखी था जब वह अपने और अपने परिवार के सुख को लेकर सोचता था लेकिन जबसे उसने इससे इतर सोचना शुरू किया तब से वह बेचैन है। बेचैनी उसके व्यक्तित्व में बद्धमूल हो जाती है। यह पूरी व्यवस्था व्यक्ति को एक सीमित सोच के खांचे में फिट करना चाहती है। जिसके बाहर वह किसी भी तरह सोचने की कोशिश न करे। प्रमोद वर्मा के साथ भी यही है। वह जब इस दायरे को तोड़ने की कोशिश करता है तो हर तरफ से उसको प्रताड़ित किया जाता है। पत्नी अलग तरह से अपना जाल बिछाती है तो आ◌ॅफिस के लोग अलग तरह से। जबकि प्रमोद वर्मा प्रताड़ना चाहता है, जिससे वह वर्तमान की ऊब से मुक्त हो सके। यह ऊब मध्यवर्गीय आत्मचेतस व्यक्ति की है। जो अपने द्वारा किए गये समझौते जान लेने के बाद उस पूरी व्यवस्था से अपने को काट लेना चाहता है और प्रायश्चित के लिए दंड चाहता है। जिस दंड की कल्पना मुक्तिबोध की कहानी 'क्ला◌ॅड ईथरली' का कथा पात्र क्लाड करता है। इन दोनों की मनःस्थिति में बहुत अंतर होने के बावजूद दोनों के क्रियाकलाप बहुत कुछ समान हैं। क्ला◌ॅड द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा नागासाकी पर बम गिराने के अपराध में दंड चाहता है। इसलिए वह वारदातें करने लगता है। जबकि अमेरिकी व्यवस्था उसको वा◌ॅर हीरो का खिताब दे चुकी है। ऐसे में उसको दंडित नहीं किया जाता। जबकि क्ला◌ॅड दंड चाहता है। ठीक वैसा ही दंड 'सस्पेंशन' के रूप में प्रमोद

चाहता है। इसीलिए वह आॅफिस के लोगों को उल्टा-सीधा कहता है। सीनियर पीए राधा से अश्लील ढंग से बात करता है। नौकरी छूटने पर वह एक अखबार में नौकरी करने लगता है लेकिन वहां भी उसे सुख नहीं मिलता। इसीलिए वह लोगों की नजर में उपहास का पात्र बनने के लिए लोगों से अपने फिश्चुला रोग के बारे में बताता है। उसके भीतर इतना तीव्र अंतद्र्वंद्व है जिसके कारण वह भटकता रहता है। कहानीकार, प्रमोद के भीतर के अंतद्र्वंद्व को बहुत ही बारीकी से चित्रित करता है। प्रमोद दरअसल दुखी होना चाहता है जिससे उसे सुख का अनुभव हो सके। इसीलिए वह सस्पेंड होने की, दुःखी होने की कामना करता है। उसकी पत्नी जो एक तरफ उसके दुःखी होने की कामना करती है तो दूसरी तरफ वह अपने स्वार्थ पूरे करने में लगी रहती है। वह सोचती है कि कहीं यदि सही में नौकरी छूट गई तो सुख का पूरा ताना-बाना समाप्त हो जायेगा। इसके लिए वह लगातार प्रयास करती है कि कैसे भी प्रमोद को सुख की अनुभति हो। इन पात्रों की मनोदशा को उनके विपरीत व्यवहार से देखा जा सकता है। इससे इस दौर के यथार्थ की जटिलता को समझा जा सकता है। जिसमें एक आदमी कितने तरह के अंतद्र्वंद्व के साथ जीने को मजबूर है। प्रमोद की पीड़ा इस पूरी संस्कृति को लेकर है जिसमें कि उसके पूरे सोचने के ढंग को बदल दिया था। आज जब वह इस बात को जान गया है तो पीड़ित है। इस संस्कृति के बारे में प्रसिद्ध चिंतक नोम चाॅमस्की लिखते हैं-लोग चीजों को जिस तरह से देखते हैं, उनके बारे में लोग जिस तरह से सोंचते हैं, उस तरीके को ही नियंत्रित किया जाए।' यह नियंत्रण अलग-अलग तरह से किया जाता है। प्रमोद की पूरी चिंतन प्रक्रिया को इस संस्कृति में बदलकर रख दिया था। उसी में वह अथाह सुख भी महसूस कर रहा था। इसके अतिरिक्त उसे सुख का कोई दूसरा रूप भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। आज जब वह इससे इतर सुख पाना चाहता है तो सभी उसके पीछे पड़ जाते हैं। यह संस्कृति विपरीत विचारधारा के व्यक्ति को उसके अपने ही घर में अकेला बना देती है। प्रमोद घर से लेकर आॅफिस तक हर जगह अपने को अकेला महसूस करता है। पत्नी उसको सुखी बनाने के वही सारे हथकंडे अपनाती है जो इस उपभोक्तावादी संस्कृति के मूल में हैं।

भूमंडलीकृत संस्कृति की सांस्कृतिक आलोचना

भूमंडलीकरण की संस्कृति ने हर चीज को उत्पाद में बदल दिया है। वह चाहे संबंध ही क्यांे न हों? जिसके कारण संबंधों में भी एक स्वार्थ भावना आ गई है। प्रभा खेतान 'भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र' पुस्तक में उपभोक्तावाद का सामान्य संबंधों पर क्या असर पड़ता है इसके संदर्भ में लिखती हैं-'भौतिक वस्तु के साथ अभौतिक वस्तुएं, मसलन कुटुंब-कबीला, प्रेम-कला और बौद्धिकी सभी का वस्तुकरण होता है तथा विनिमय के संदर्भ में उनका मूल्यांकन होता है।' अखिलेश की कहानियों में इस तथ्य को देखा जा सकता है। इनकी कहानियां इस उपभोक्तावादी संस्कृति की एक आलोचना निर्मित करती हैं। 'वजूद' कहानी में जयप्रकाश इस पूरी संस्कृति की आलोचना करता है। वह अपने परंपरागत आयुर्वेद के ज्ञान को किसी भी कीमत पर बेचने के लिए तैयार नहीं है। जयप्रकाश पढ़ा-लिखा न होने के बावजूद अपने पिता से उसे विरासत में आयुर्वेद का ज्ञान मिला है। उसके पिता गांव के बैद जी के यहां हलवाही करते थे और गांव के पास के जंगल से बैद जी के लिए जड़ी-बूटियां खोजकर लाते थे। जिनके उनको असली नाम तक बैद जी ने नहीं बताये थे। यह संयोग ही कहा जायेगा कि लगातार जड़ी-बूटियां लाने के कारण वह कुछ का किन मर्जों

में प्रयोग किया जाता है यह भी जान गये था। जिसकी बड़ी कीमत उनको चुकानी पड़ी थी। जिसमें उनकी मौत हो गयी थी। उनका अपराध बस इतना था कि उनके शरीर से एक सुगंध आ रही थी। नीची जाति के शरीर से सुगंध यह बैद जी और उस समय के गांव के उच्च वर्ग के लोगों को स्वीकार नहीं था। उसी ज्ञान के बल पर जयप्रकाश अपने पिता का बदला लेता है। वह अपने ज्ञान का सौदा नहीं करता। वह एक तरफ तो ज्ञान पर उच्च वर्ग के प्रभुत्व को तोड़ता है तो दूसरी तरफ भूमंडलीकरण की संस्कृति से निर्मित उस पूरी नव साम्राज्यवादी पूंजीवादी ज्ञानकांड को चुनौती देता है, जो ज्ञान के हर स्रोत पर कब्जा करना चाहता है। जयप्रकाश के पिता को इस आयुर्वेद के ज्ञान के कारण गांव के बैद जी ने प्रताड़ित किया था। उस प्रताड़ना से उनका जातीय अहंकार तुष्ट हुआ था कि एक दलित कैसे उनकी बराबरी करने की बात सोचेगा? जयप्रकाश उसी अपमान का बदला लेता है। 'जय प्रकाश ने बैद महाराज की कुर्सी को धक्का दिया। वे गिर गए तो उनकी नाक पर अपने घुटनों से मारा और बैद महाराज के चीखने से पहले वह खुद दर्द से चीखा।...वह तो उस तरह चीखना चाहता था जैसे उसका पिता रामबदल नाक पर घूंसा पड़ने पर चीखा था। इतनी तेज चीख़ कि आसपास के पेड़ों पर बैठे परिन्दे उड़ गये थे। और थोड़ी दूर पर खड़े मवेशी चलने लगे थे। एक बछड़ा दौड़ता हुआ भागा था।' आज तक जिस जयप्रकाश का कोई अस्तित्व नहीं था, वह आज अपने पूरे वजूद को सिद्ध करता है। वह उन कंपनियों के प्रमुखों को भी अपने वजूद की पहचान कराता है जो उसको किसी भी कीमत पर खरीदने के लिए तैयार खड़ी थीं। उसे आज तक अपनी विद्या से एक पैसा नहीं मिला है तो क्या? यश तो मिला है। वह अपनी विद्या को पैसे की कीमत पर नहीं बेंचता।

कहानी जिस परिवेश में घटित होती है उसके मार्फत इस पूरी संस्कृति के प्रभाव को देखा जा सकता है। इस संस्कृति ने हर चीज को यहां तक कि ज्ञान को भी वस्तु में तब्दील कर दिया था। जयप्रकाश इस पूरी संस्कृति की आलोचना करता है। वह पैसे के बदले जंगल से वही सुगंध लाकर अपनी बेटी कटोरा को देना चाहता है। जयप्रकाश भौतिक सुख के बदले कर्तव्य के सुख को अहमियत देता है। इसीलिए जयप्रकाश का कोमल और पत्नी जाॅन तथा गांव के लोगों की नजर में भले ही कोई अस्तित्व न हो परंतु वह जिस धरातल पर खड़ा है वह धारा से अलग है। यह सांस्कृतिक आलोचना ठेठ भारतीय नजरयिा है। जिसकी पूरी पंरपरा को देखा जा सकता है।

वहीं 2001 के बाद पूरी दुनिया में अमेरिका द्वारा मुस्लिम कौम के खिलाफ जो दुष्प्रचार किया गया है, उसकी सच्चाई भी अखिलेश ने अपनी कहानियों के मार्फत बयान की है। कहानीकार इसकी आलोचना निर्मित करता है। 'अंधेरा' कहानी में हिंदू लड़के और मुस्लिम लड़की के बीच प्रेम ऐसे धरातल पर विकसित होता है जहां पहले दोनों अपने धार्मिक संस्कारों में रूढ़ थे लेकिन प्रेम करने के बाद दोनों के भीतर एक नए तरह के भाव पैदा होने लगते हैं। जिनमें दूसरे धर्म के प्रति नफरत नहीं है। लेकिन दंगों के समय कैसे लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं इसकी बारीकी से पड़ताल की गई है। यह साफतौर से दिखाने की कोशिश की गई है कि दंगे मूलतः सियासी जमात के अपने हितों की उपज होते हैं। कहानी में पुलिस व्यवस्था के चरित्र पर सवाल उठाया गया है। जो दंगों के समय हिंदुओं का खुले तौर से साथ देती रही है। मुसलमानों के भीतर अल्पसंख्यक होने का जो भय है वह इस कहानी में देखा जा सकता

है। रेहाना कहती है-''मंुबई के दंगों में मुसलमानों के कत्ल के बाद वहां के कई मुसलमान दंगों में अपने मुसलमान होने की आइडेंटिटी छिपाने के लिए तुम्हारे मजहब की बातें सीखने लगे थे...पर गुजरात के दंगों के बाद मुल्क भर के मुसलमान बेचैन हुए...। तुम्हे हैरानी होगी लेकिन सच है-रामायण, महाभारत की किताबें मेरे अब्बू ने मुझे पढ़ने के लिए दीं। कहा था उस वक्त उन्होंने-'बेटी पढ़ लो बुरे वक्त में काम आ सकती हैं...।'' इस तथ्य से इस पूरी कौम की मनोदशा को समझा जा सकता है। वह अपने ही देश में दोयम दर्जे के नागरिक बनकर रह गये हैं। कहानीकार दंगों की भयावहता के साथ समाज की उस तस्वीर को भी प्रस्तुत करता है जो आमतौर से रचनाकारों के द्वारा भुला दी जाती है। वह है दंगों के समय सौहार्द की कहानियां। इस कहानी में उन किस्सों को भी बताया गया है। यही है भारतीय संस्कृति जिसे किसी भी साम्प्रदायिक दंगों के दौरान देखा जा सकता है। जहां एक तरफ भयानक बर्बरता की कहानियां होती हैं तो वहीं कुछ दूसरे तरह की कहानियां भी होती हैं।

दरअसल समाज की मनोदशा एक समय एक जैसी नहीं हो जाती। वह चाहे दंगे का समय क्यों न हो। समाज कुछेक तरह के लोगों का समूह नहीं हैं। समाज अलग-अलग तरह के लोग होते हैं। इसी कहानी में एक तरफ रेहाना और प्रेमरंजन की प्रेम कहानी है जो धर्म की मान्यताओं को तोड़ते हुए विकसित होती है तो दूसरी तरफ दंगे की भयावहता और समाज का नजरिया है। इस दंगे में कुछ ऐसे भी लोग प्रेमरंजन-रेहाना को मिलते हैं जो सांप्रदायिक मनोदशा से पूरी तरह मुक्त हैं। उनकी चिंता है कि दंगा शुरू होने से पहले लोग अपने घरों में पहुंच जायें और वह कुछ दिनों के लिए अपने घर में राशन एकत्र कर लें। जिससे दंगे के बाद कफ्र्यू के दिन आसानी से कट सकें। कहानी की पृष्ठभूमि लखनऊ की है उस संदर्भ में रखकर देखने से इस बात को पुख्ता भी किया जा सकता है।

व्यवस्था का मनुष्य विरोधी चरित्र

मुक्तिबोध ने व्यवस्था के आतंक के बारे में कहा है-'खड़ी हंै सिर झुकाये/सब कतारें/बेजुबां बेबस सलाम में।' आज यह व्यवस्था और ज्यादा खतरनाक है। वह आज खुले तौर से मनुष्य विरोधी कामों में शामिल है। अखिलेश की कहानियों में इस व्यवस्था के दो रूप-राजनीतिक और सामाजिक दिखाई पड़ते हैं। अखिलेश की कहानियों में इस व्यवस्था की सच्चाई को देखा जा सकता है। 'श्रंृखला' कहानी में कहानी पात्र रतन कुमार के मार्फत इसे देख सकते हैं। कथा पात्र को कहानीकार ने इस रूप में चित्रित किया है कि उसे ठीक तरह से दिखाई नहीं देता जबकि वह अपनी प्रेमिका सुनिधि के सभी गोपन रहस्यों को देख समझ लेता है। सुनिधि इस बात को लेकर चकित थी कि इतनी बारीकी से उसने उसके शरीर का वर्णन किया था। ''...दीपावली के अमावस्या वाली रात थी। सुनिधि की बेडरूम की लाइटें बुझी हुई थीं। सिर्फ एक मेज पर सात मिट्टी के दीप जल रहे थे। हर दीए की तेल में डूबी बाती का एक हिस्सा टिमटिमा रहा था।...कमरे में मद्धिम झीनी सी रोशनी थी। जैसे उनींदेपन में प्रकाश धीरे-धीरे सांस ले रहा हो। उन दीपों की रोशनी में सुनिधि के वक्ष भी जल रहे थे। सुनिधि की नग्न पीठ पर दाईं हथेली रखी, 'पीठ भी जल रही है।'...सुनिधि के दोनों वक्षों के मध्य चूमा था, यहां तिल है तुम्हारे।' उसने तिल देखा था सुनिधि की गरदन के बाईं तरफ भी जहां केशों का इलाका खत्म होता था। उसने तिल देखा था नितंब पर और स्कंध पर और नाभि के थोड़ा ऊपर।'

कथा पात्र एक कॉलेज में लेक्चरर है और एक समाचारपत्र में 'अप्रिय' शीर्षक से कॉलम लिखता है जिसको लेकर पूरी व्यवस्था उसके खिलाफ लग जाती है। उसने शब्दों को ऐसा डिकोड किया था कि पूरी व्यवस्था के चरित्र को आसानी से समझा जा सकता है। ''किसी सत्ता से भिड़ने का सबसे कारगर तरीका यही है कि उसके समस्त सूत्रों, संकेतों, चिह्नों, व्यवहारों, रहस्यों, विंबों को उजागर कर दो। हर सत्ता अपनी हिफाजत के लिए शोषण और दमन की वैधता प्राप्त करने के लिए समाज में बहुत सारी कूट संरचनाएं तैयार करती है।...सत्ता से लड़ना है, उसका शिकार करना है तो...हर कोड को डिकोड करो, हर सूत्र की व्याख्या करो, हर गुप्त को प्रकट करो...।' उसका अपराध बस इतना था कि उसने व्यवस्था के खिलाफ एक आवाज उठायी थी जिसके कारण ही उसे हर तरह से प्रताड़ित किया जा रहा था।

दरअसल कोई भी व्यवस्था अपने चारों ओर एक कवच तैयार करती है जिसके सामने सभी नतमस्तक रहते हैं। इसके खिलाफ जैसे ही कोई खड़ा होने की कोशिश करता है कि पूरी व्यवस्था उसके खिलाफ हो जाती है। आज के परिदृश्य में इसे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर देखा जा सकता है। इराक के मसले पर अमरीका ने इसी तरह का बर्ताव किया। जिसको लेकर उसने पूरी दुनिया को दो खेमों में बांट दिया। जिसमें या तो आप साथ में है या विरोध में हैं। इसके अतिरिक्त कोई पक्ष ही नहीं है।

राजनीतिक व्यवस्था की सच्चाई को 'यक्षगान' कहानी में भी देखा जा सकता है। जिसमें अपने-अपने राजनीतिक हितों को पूरा करने के लिए श्यामनारायण, मीरा यादव आदि लोग लग जाते हैं। इसमें सरोज की पीड़ा का कोई मायने नहीं है। जो अपने प्रेमी छैल बिहारी के प्रेम में पड़कर परमू, भोला, गोरखनाथ, डॉक्टर आदि की हवस का शिकार होती है। मीरा यादव भी उसके मुद्दे को लेकर अपनी राजनीति करती हैं। मीरा यादव का साफ मानना था, ''गोरखनाथ बलात्कारी है, उनको इस जघन्य कृत्य के लिए कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए। उनकी इस करतूत पर उनकी पार्टी की खामोशी बताती है कि इस कांड में उसकी भी मिलीभगत है।'' वहीं मीरा यादव की पार्टी के मुखिया जी इस बात से खफा हैं कि उन्होंने बिना सोचे ही इस मुद्दे को क्यों उछाल दिया, इससे कितने वोटर नाराज हो जायेंगे? सरोज पांडेय के खिलाफ पक्ष-विपक्ष दोनों शामिल हो जाते हैं। इससे एक बात तो साफ हो जाती है कि आज व्यवस्था का जो चरित्र है वह मूलतः मनुष्य विरोधी है। यदि ऐसा नहीं होता तो सरोज के मामले को लेकर पक्ष-विपक्ष एक जैसी राय नहीं रखते? सरोज, मीरा यादव के लिए अपने स्वार्थ पूरे करने का एक मोहरा मात्र है। वह इसी के मार्फत अपने पार्टी प्रमुख से अपने संबंधों को और ज्यादा प्रगाढ़ कर लेना चाहती है। सरोज के मामले से राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र के साथ-साथ सामाजिक प्रभुत्व की गणित को भी समझा जा सकता है। सरोज इस सामाजिक व्यवस्था में सबसे ज्यादा गुनहगार बना दी जाती है। वह अपने प्रेमी छैल बिहारी से लेकर गोरखनाथ और यहां तक कि अपने पिता और भाई की नजर में भी बदचलन है। उसका हर स्तर पर शोषण किया जाता है। वह चाहे उसके साथ प्रेम का नाटक करने वाला छैल बिहारी और उसके दोस्त हों या गोरखनाथ या मीरा यादव। इस सामाजिक व्यवस्था में औरत को आज भी जिंस के अतिरिक्त किसी दूसरे रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त स्त्री के किसी दूसरे रूप की कल्पना ही नहीं की जाती। उसके साथ उसके शरीर को इस तरह से चस्पा कर दिया गया है कि वह इससे मुक्त हो

ही नहीं पाती। सरोज भी मुक्त नहीं है और मीरा यादव भी मुक्त नहीं है। समस्या तब खड़ी हो जाती है कि जब इस अंधकार की सघनता इक्कीसवीं सदी में बढ़ती दिखाई पड़ने लगती है।

दरअसल आज समाज में जो समस्याएं हैं उनके मूल में राजनीतिक व्यवस्था में हो रहा पतन जिम्मेदार है। राजनीति आज समाज में फैली उन मान्यताओं को चुनौती नहीं देती अपितु उनको पोषित करती है। इसी कारण समाज में वैसी ही प्रवृत्तियां पनपने लगती हैं। कहानी के मार्फत यदि कहें तो इसमें सभी लोग एक ही तरह के चरित्र वाले दिखाई पड़ते हैं। वह चाहे गोरखनाथ हों, नेता जी हों या छैल बिहारी और उसके दोस्त।

यथार्थ की परत-दर-परत स्कैनिंग

अखिलेश की कहानियां यथार्थ को विभिन्न कोणों से दिखाती हैं। वह चाहे शहरी यथार्थ हो या ग्रामीण। 'वजूद' कहानी में सिर्फ जाति व्यवस्था की विद्रूपता को ही चित्रित नहीं किया गया है अपितु इस कहानी के मार्फत जातीय शोषण के पूरे इतिहास को भी समझा जा सकता है। ठीक ऐसी ही सच्चाई 'ग्रहण' कहानी में भी दिखाई पड़ती है। जिसमें राजकुमार को इसलिए हर समय प्रताड़ित किया जाता है कि उसके गुदा द्वार नहीं था। डाक्टर ने पेट में आपरेशन से पेट में गुदा द्वार तो बना दिया था लेकिन वह उसके लिए अपमान का पर्याय ज्यादा था। उसे पेट हगना कहकर प्रताड़ित किया जाता है। यह प्रताड़ना स्कूल से लेकर हर जगह उसको झेलनी पड़ती है। उसके पिता विपद राम को इस बात का संतोष था-''भगवान की बड़ी कृपा है कि ज़माना बदल गया है, वर्ना पहले गरीब आदमी को मारने के लिए पहले किसी बहाने की भी जरूरत नहीं थी।'' इस प्रताड़ना से वह मुक्त होना चाहता था। पिता तो गरीब थे लेकिन दलितों की मसीहा बनने वाली बहन जी ने भी इसी गुदा द्वार के कारण भगा दिया था। इससे उस पात्र की विडंबना को देखा जा सकता है। जो हर समय घुटन भरी जिंदगी जीने को मजबूर है।

राजकुमार समाज का वह पात्र है जो सबसे अधिक उपेक्षित है। जिसे उसे हर समय अहसास कराया जाता है। कहानीकार इस पात्र के मार्फत समाज का, सत्ता में बैठे लोगों का कमजोर लोगों के प्रति जो बर्ताव है उस पर टिप्पणी करता है। इसमें स्कूल के मास्टर से लेकर बहन जी का एक ही तरह का चरित्र दिखाई पड़ता है। कहानीकार इसके लिए जिस तरह के पात्र की कल्पना करता है उससे समाज की मनोदशा की असलियत पता चलती है। यथार्थ सिर्फ शोषण का वर्णन करने मात्र से ही नहीं दिखाई पड़ता अपितु यथार्थ कई बार मनोदशा के सूक्ष्म विवेचन से भी पता चल जाता है। राजकुमार का कहानी मंे जिस तरह से विकास होता है उससे समाज की गति को भी जांचा जा सकता है। उसके स्कूल जाने से लेकर उससे गांव के दंबग लोगों द्वारा मुर्गी छीनने और फिर उसमें दैवीय शक्तियों की कल्पना करने तक का जो पूरा वृतांत है उससे समाज का चरित्र कैसे-कैसे बदलता जा रहा है, इसे देखा जा सकता है। जो राजकुमार पहले लोगों के लिए पेट हगना मात्र था बाद में उन्हीं लोगों ने उसे हनुमान जी का बड़ा भक्त बना दिया। उसके लापता होने की घटना और फिर कुछ अजीब सी घटनाओं के चलते इसे दैवीय दंड माना गया जबकि उन घटनाओं को राजकुमार ही कर रहा था।

वहीं 'यक्षगान' कहानी में राजनीतिक व्यवस्था में पतन किस हद तक हो गया है इसकी सच्चाई देखी जा सकती है। राजनीति में महिलाओं के सशक्तीकरण के कितने भी ख्याली पुलाव क्यों न पकाये जायें परंतु उनकी वास्तविकता एकदम अलग है। इस तथ्य को बारीकी से समझा जा सकता है। पुरुष समाज के शोषण का शिकार सरोज पाण्डेय होती हैं तो उसी का शिकार मीरा यादव हो रही हैं। नेताजी मीरा यादव से कहते हैं-''आ...आ...रंडी...आ...जा...रंडी।''...''मुझसे क्या गलती हुई? मैं तो तन-मन-धन से आपकी सेवा में हाजिर रहती हूं।'' ''हरामजादी तू ये सरोज नाम की कौन सी छिनाल लिए घूम रही है?'' राजनीति में महिलाओं की वास्तविक स्थिति को इस कहानी के मार्फत देखा जा सकता है। महिलाओं को नेतृत्व की मुख्य भूमिका में नहीं रखा जाता। वैसे इसके अपवाद भी कुछ पार्टियों में देखे जा सकते हंै। यह बात मैं उन राजनीतिक पार्टियों के संदर्भ में कह रहा हूं जहां लोकतांत्रिक प्रक्रिया का पालन करने की बात कही जाती है। वहां महिलाओं को दोयम दर्जे का ही पद दिया जाता है। इसके व्यापक रूप को महिला विधेयक के संदर्भ में भी देखा जा सकता है। जिसे यक्षगान कहानी में चिह्नित भी किया गया है।

ग्रामीण और शहरी समाज के यथार्थ का मिश्रित रूप

अखिलेश की कहानियों में गांव और शहर को बांट-बांटकर नहीं देखा गया है। इसका कारण साफ है कि जब दुनिया भूमंडलीकृत गांव में बदल रही है तब क्या भारत के गांव और शहर पूरी तरह से अलग-अलग रह सकते हैं? आज शहर और गांव बेतरह से जुड़े हुए है। जिसका कारण केवल यह मोबाइल क्रांति नहीं है अपितु दूसरे भी बहुत से कारक ज्यादा प्रभावी भूमिका निभा रहे हैं। आज भूमंडलीकरण की संस्कृति का प्रभाव गांव स्तर तक पहुंच रहा है। मल्टीनेशनल्स गांवों को भी अब अपने फायदे के निशाने पर ले रही हैं। इसीलिए छोटे-छोटे कस्बों तक में इन कंपनियों के आउटलेट मिल जाते हैं। इसके साथ ही इस जुड़ाव को दूसरी तरह की समस्याओं के मार्फत देख सकते हैं। आज साम्प्रदायिकता जैसी समस्या केवल शहरी समस्या नहीं है। इससे गांव तक की संस्कृति किसी न किसी रूप में प्रभावित हुई है। जिसके प्रमाण हाल के दंगों तक में देखे जा सकते हैं। 'वजूद' कहानी से लेकर 'यक्षगान', 'जलडमरूमध्य', 'श्रृंखला' आदि कहानियों में इस मिश्रित यथार्थ को देखा जा सकता है। 'यक्षगान' में सरोज के शोषण का कारण गांव या शहर नहीं है। वह दोनों जगह के लोगों के द्वारा ठगी जाती है।

वहीं 'जलडमरूमध्य' कहानी में सहाय जी के मार्फत शहरी जीवन की विडंबना को समझा जा सकता है। वह चिरैयाकोट छोड़कर जब अपने गांव आते हैं तो वहां के लोगों द्वारा ही उनको ठगा जाता है और जब अपनी आंसू न निकलने की बीमारी का इलाज कराने दिल्ली अपने बेटे चिन्मय और मनजीत के यहां जाते हैं तो वहां भी चिन्मय उनसे चिरैयाकोट के मकान, बैंक-बैलेंस आदि के बारे में पूछता है और उनको बेचने के लिए कहता है। जिसके लिए वह मां-पिता को अलग-अलग करके समझाने की कोशिश करता है। सहाय जी दोनों जगह के लोगों द्वारा ठगे जाते हैं। चिन्मय अपनी पत्नी मनजीत से कहता है-''चिरैयाकोट में न जाने कितनी प्रापर्टी होगी। सुनते तो हैं, बहुत है। यह भी सुना जाता है कि करोड़ रुपये का तो गोल्ड होगा। मम्मी पापा के बैंक अकाउंट मिलकर हमें हैरत में डाल देंगे, इसका

मुझे पूरा यकीन है।'' सहाय जी की विडंबना को क्या ग्रामीण या शहरी किसी एक खांचे में बांटकर देखा जा सकता है? और क्या यह ठीक रहेगा?

दरअसल साहित्य में यथार्थ को देखने का जो नजरिया है वह पुराने ढंग का है। इस बात को प्रेमचंद और बाद में फणीश्वरनाथ रेणु तक के कथा साहित्य बहुत साफ तौर से देखा जा सकता है। सत्तर के बाद का जो परिदृश्य है उसमें गांव और शहर के बीच बने नए तरह के सम्बन्ध को देखना जरूरी है। यह रचना में जितना जरूरी है ठीक उतना ही महत्व इसका आलोचना में भी है। इसके बिना यदि रचना का मूल्यांकन परम्परागत गांव और शहर के संदर्भ में रखकर विवेचित करने की कोशिश की जाती है तो उससे आलोचना एकांगी हो जाती है। अखिलेश की कहानियों में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है।

लंबी कहानियों में विभिन्न कथाओं का समावेश

लंबी कहानी में कहानीकार विभिन्न कोणों से कथा को आगे बढ़ाता है। लंबी कहानी की सारी अन्य कथाएं मूल कथा से जुड़ी रहती हैं। अखिलेश की कहानियों में भी इस तथ्य को देखा जा सकता है। समस्या तब खड़ी हो जाती है जब कोई अवांतर कथा मूल कथा का हिस्सा न होते हुए भी उसे जबर्दस्ती कहानी में शामिल कर दिया जाता है तो वह कहानी को न केवल कमजोर करती है अपितु उससे कथा रस भी प्रभावित होता है। अखिलेश की 'वजूद' कहानी में छोटे शीशे के टुकड़े की जो अवांतर कथा शामिल की गई है जिस पर कहानीकार ने लगभग दो पृष्ठ खर्च किए है। वह मूल कथा से किसी भी रूप में जुड़ा हुआ नहीं है। शीशे के टूटने से लेकर जान के उठाने, धोती के कोंछ में बांधने, उसमें अपना और पति का चेहरा साथ देखने की कोशिश आदि का जो वर्णन किया गया है वह रोचक भले ही है परंतु कथा से इसका कोई जुड़ाव नहीं बनता। यदि रोचकता को आधार बनाकर इस तथ्य को नजरअंदाज किया जाये तो क्या इससे रचना का मूल्यांकन सही से हो पायेगा? रोचकता कथा का सहायक तत्व है। मूल तत्व कथा है। कथा यदि किसी अवांतर कथा से कमजोर हो जायेगी तो पाठक पर उसका संपूर्णता में जो प्रभाव होगा वह सकारात्मक नहीं होगा। कहानीकार अवांतर कथाओं के प्रयोग के मामले में भी यदि सतर्क रहता है तो इससे कथा का प्रभाव और ज्यादा बढ़ जाता है। लंबी कहानी कहानी विधा की समृद्ध विधा है जिसमें यदि इन सब तथ्यों का ध्यान रखा जाए तभी इस जटिल यथार्थ को ज्यादा गहराई से विवेचित किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त अखिलेश की कहानियों में लोक कथाओं का बहुतायत में प्रयोग किया गया है। जिससे कथा रस और ज्यादा प्रभावी हो जाता है। 'ग्रहण' में राजकुमार के बारे में जिस तरह की लोक कथाएं वर्णित की गई हैं उससे कथा और ज्यादा प्रभाव पैदा करती है। राजकुमार को लेकर उस ग्रामीण समाज की जो मनोदशा है उसे बहुत बारीकी से चित्रित किया गया है। इनकी अधिकांश कहानियों में पात्रों और घटनाओं का विस्तृत ढंग से वर्णन किया गया है। इसे 'चिट्ठी' कहानी से लेकर 'ग्रहण', 'यक्षगान' आदि कहानियों में देखा जा सकता है। बारीकी से वर्णन करने के पीछे रचनाकार की दृष्टि अपने समय की जटिलताओं को पूरी प्रामाणिकता से अभिव्यक्त करने को लेकर है। 'चिट्ठी'

कहानी के मार्फत नवें दशक में बेरोजगारी की पीड़ा को युवा वर्ग किस तरह से झेल रहा था इसे देखा जा सकता है। जिसमें उसका होना उससे छीन लिया गया था। जिसमें उसके सपने खत्म हो गये थे। उन्हें तिल-तिल मरने को मजबूर किया गया था। कहानी में इस बात को पूरे विस्तार से दिखाया गया है। पाश ने अपनी एक कविता में सपनों के टूटने के बारे में लिखा है-श्रम की लूट सबसे खतरनाक नहीं होती/पुलिस की मार खतरनाक नहीं होती....सबसे खतरनाक होता है/मुर्दा शांति से भर जाना/न होना तड़प का, सब सहन कर जाना,/घर से निकलना काम पर काम से घर लौट आना/सबसे खतरनाक होता है/हमारे सपनों का मर जाना।' यह सपनों की मौत का जो मामला है उससे देश की गति की दिशा को समझा जा सकता है। जिसमें तेज दिमाग युवा वर्ग को एक अदद सी नौकरी नहीं मिल पाती है। उनका दोष बस इतना है कि उन्होंने व्यवस्था को हर मौके पर चुनौती दी है। सही में देखा जाय तो वह पढ़ाकू और लड़ाकू रहे हैं। व्यवस्था की नजर में ऐसे लोग सबसे खतरनाक होते हैं। वह व्यवस्था चाहे कैसी भी क्यों न हो? उसका चरित्र एक जैसा होता है। विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों से लेकर राजनीतिक व्यवस्था में बैठे लोग तक के चरित्र से इसे देखा जा सकता है।

कथाकार की पक्षधरता

रचनाकार की पक्षधरता अपने समय के सबसे कमजोर लोगों के प्रति होती है। इस तथ्य को किसी भी प्रगतिशील रचनाकार में देखा जा सकता है। इसका एक खास कारण है वह है लेखक की संवेदनशीलता। वर्तमान समय की हर तरह की ज्यादतियों के खिलाफ रचनाकर एक मुकम्मल आवाज के रूप में उसका प्रतिरोध करता है। अखिलेश की लंबी कहानियों के अतिरिक्त अन्य कहानियों-बायोडाटा, अगली शताब्दी के प्यार का रिहर्सल, ऊसर आदि कहानियों में भी इस तथ्य को जांचा जा सकता है। 'श्रृंखला' कहानी का रतन कुमार उस पूरी व्यवस्था की प्रताड़ना से इतना डर जाता है कि वह उसे अपराजेय मानकर अपने को संघर्ष से ही अलग कर लेता है। यथार्थ के धरातल पर आज की व्यवस्था को संदर्भ में रखते हुए विचार किया जाये तो इसमें कोई संदेह भी नहीं है। परंतु एक रचनाकार सारी अमानवीयताओं, षड्यंत्रों को जानने के बावजूद कमजोर का पक्ष लेता है और कल्पना के मार्फत उस व्यवस्था के खिलाफ पात्र को खड़ा करता है। यही साहित्यकार की प्रतिबद्धता है। अखिलेश वर्तमान व्यवस्था की अमानवीयताओं का वर्णन करते समय अपनी पक्षधरता किसी भी स्तर पर नहीं छोड़ते हैं। यह बात भले ही पाठक को क्यों न कचोटे? कि यह यथार्थ नहीं है। रचनाकार साहित्य में यथार्थ की मात्र झलक प्रस्तुत करता है और कुछ स्वप्न की कल्पना करता है। वह हूबहू यथार्थ को प्रकट नहीं करता। इसलिए रचना में यथार्थ की हूबहू तलाश भी अपने में उचित नहीं है। इसी कारण घोर हताशा के दौर में भी एक उम्मीद की किरण दिखाई पड़ जाती है। श्रृंखला कहानी में कहानीकार सुनिधि के मार्फत इसकी कल्पना करता है। ''तुम यहां घर में बंद हो और बाहर आग लगी हुई है। ऐसा लगता है जैसे देश में बगावत हो गई है। तमाम लोग सरकार, धनिकों और धर्माधीशों के खिलाफ सड़कों पर उतर आए हैं। ऐसा माना जा रहा है कि 1942 के भारत छोड़ो के बाद पहली बार देश में सत्ता के विरोध में ऐसा गुस्सा पनपा है।...छात्र, उनकी पूछो मत, बाप रे बाप! कोई भरोसा नहीं करेगा कि ये फास्ट फूड, बाइक, मस्ती और मनोरंजन के दीवाने लड़के हैं। वे

अपने शहरों, कस्बों और गांवों में गुट बनाकर धावा बोल रहे हैं।...जिस रोज अनशन स्थल से तुम गायब हुए, समाचार जानकर सत्तरह हजार लोग इकट्ठे हो गये थे। वे तुम्हारी जिंदाबाद के नारे लगा रहे थे और तुम्हें ढूंढ़कर लाने की मांग कर रहे थे।' ठीक इसी तरह की पक्षधरता अखिलेश की दूसरी कहानियों में भी देखी जा सकती है। वह हर तरह की व्यवस्था के खिलाफ पात्र को खड़ा करते हैं। 'शापग्रस्त' का प्रमोद वर्मा, 'ग्रहण' का राजकुमार, 'यक्षगान' की सरोज वर्मा आदि ऐसे ही पात्र हैं जिनके मार्फत रचनाकार की पक्षधरता को देखा जा सकता है। अखिलेश की कहानियां वर्तमान समाज की विसंगतियों से मुक्ति की तरफ प्रेरित करती हुई दिखाई पड़ती हैं। जिनमें संघर्ष की जिजीविषा है। मुक्ति की कामना है। इसीलिए अखिलेश की कहानियां अपने समय की बड़ी कहानियां बन जाती हैं।